फर्जी मुठभेड़ों में मारा जाना कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता, बल्कि इसमें संलिप्त अधिकारियों को पुरस्कृत भी किया जाता है। इस तरह की बातों एवं घटनाओं के संपूर्ण आतंकवाद और गृहयुद्ध में बदलने की प्रबल संभावना बनती है।

देशी या विदेशी शासकों द्वारा अपने किसी स्वार्थ को ध्यान में रख कर किसी समय विशेष में आतंकवादियों का समर्थन किया जाता है, इसे आप अवसरवादिता कह सकते हैं, पर अक्सर ये आतंकवादी उनके नियंत्रण के बाहर चले जाते हैं, क्योंकि उनके उद्देश्य कुछ और होते हैं। जब वे किसी वक्त के अपने आकाओं के खिलाफ खड़े हो जाते हैं तब वे उनका विरोध और उन्हें निर्मूल करने की कसमें खाने लगते हैं, पर तब तक उनकी ताक़त काफी बढ़ चुकी होती है और उन्हें नष्ट करना संभव नहीं रहता या अत्यधिक कठिन तो होता ही है। इस चेष्टा में जान-माल का बेहद नुकसान होना भी अनिवार्य हो जाता है।

> हाँ साम्यवादी सरकारें लंबे समय तक सत्ता में रहीं वहां भी धर्म पूर्णत: मिट नहीं पाया। इससे पता चलता है कि धर्म के प्रति मनुष्य जाति के एक बड़े वर्ग का आकर्षण शायद कभी कम न हो। ज्ञान-विज्ञान की तमाम प्रगति, शिक्षा के प्रसार के बावजूद धार्मिक आस्था ही नहीं, उससे जुड़े कर्मकांड भी कम होते नहीं दिख रहे और तथाकथित शिक्षित एवं संपन्न लोग भी इस मामले में किसी से पीछे नहीं।

अंतरराष्ट्रीय शक्तियां, जिनकी अर्थव्यवस्था में हथियारों का उत्पादन और बिक्री का एक बड़ा हिस्सा होता है, अपने व्यावसायिक हितों के लिए उन्हें अस्त्र-शस्त्र मुहैया करने लगती हैं, शायद इस तरह के वर्गों या व्यक्तियों को तैयार करने के पीछे भी उनका प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रेरक हाथ होता हो! प्राकृतिक संसाधनों पर कब्ज़ा भी इसका कारण बनता है और व्यावसायिक उपनिवेशवाद भी। आज की दुनिया में प्राय सारी क्रियाएं- प्रतिक्रियाएं, कई राजनीतिक सत्ताएँ भी, बाज़ार के हितों द्वारा संचालित हो रही हैं। यह निराशाकारी या अफसोसनाक तो है, पर आज का सच यही लगता है!

आईएस की क्रूरता के पीछे लोगों ही नहीं, सरकारों विशेषकर पश्चिमी सरकारों को आतंकित कर अपनी राजनीतिक सत्ता और साम्राज्य के भौगोलिक विस्तार की इच्छा भी दिखाई देती है। अंततः वे शायद समूचे मध्यपूर्व या अधिकाँश इस्लामी देशों पर अपनी हुकूमत कायम करने का ख्वाब देख रहे हैं। इसके लिए वे मध्यकालीन, अतिबर्बर, खूंख्वार हमलावरों के तरीके अपनाते हुए लग रहे हैं।

आतंकवाद का विनाश केवल हथियारों या सैन्य बलों द्वारा होना संभव नहीं लगता, न आप उसे केवल क़ानून और व्यवस्था की समस्या की तरह लेकर उसका समाधान कर सकते हैं। कई मोर्चों पर इससे मुठभेड़ करनी होगी (फर्जी मुठभेड़ नहीं)। सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, राजनीतिक, हर तरह की असमानता। अर्थात मानव अस्तित्व को प्रभावित करने वाली हर स्थिति को बेहतर बना कर ही इस पर नियंत्रण की उम्मीद की जा सकती है।

वाम राजनीति की मूल प्रतिज्ञाओं में ही धर्मनिरपेक्षता रही है (भारतीय राजनीति द्वारा किये गए सर्वधर्म समभाव के अर्थ में नहीं, बल्कि शब्दकोशीय, भौतिकवादी अर्थ में) इसलिए उसका धर्म से संवाद कठिन लगता है, हालांकि मौजूदा हालात में इसकी आवश्यकता महसूस होती है। यदि आप ऐसा संवाद स्थापित नहीं करते तो आप धर्म का विकृत और कट्टर रूप प्रस्तुत करने वालों को एक बहुत बड़ा मंच भेंट में दे देते हैं। जहाँ साम्यवादी सरकारें लंबे समय तक सत्ता में रहीं वहां भी धर्म पूर्णतः मिट नहीं पाया। इससे पता चलता है कि धर्म के प्रति मनुष्य जाति के एक बड़े वर्ग का आकर्षण शायद कभी कम न हो। ज्ञान-विज्ञान की तमाम प्रगति, शिक्षा के प्रसार के बावजूद धार्मिक आस्था ही नहीं, उससे जुड़े कर्मकांड भी कम होते नहीं दिख रहे और तथाकथित शिक्षित एवं संपन्न लोग भी इस मामले में किसी से पीछे नहीं। ऐसे में उसमें उदारता बनाए रखने के लिए, उसे कट्टरता में बदलने से रोकने के लिए, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक संवाद का होना अनिवार्य लगता है। अंत में मैं यह भी याद दिलाना चाहूंगा कि कट्टरता, जिसे मैंने इसका मूल कारण माना है, उसे समूल नष्ट करना शायद असंभव है। क्योंकि, जैसा हाल के दिनों में वैज्ञानिक अनुसंधान बता रहे हैं यह जीन्स के कारण भी है और संस्कृति की वज़हों से भी, तो संभवतः इसकी ओर आकर्षित होने वाले कुछ लोग हमेशा रहेंगे। इसलिए सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवेश ऐसा बनाए रखना होगा जिसमें इसे पनपने का और अपनी भयावह परिणतियों तक पहुँचने का मौक़ा न मिले। ■